Research maGma
An International Multidisciplinary Journal
ISSN- 2456-7078 IMPACT FACTOR- 4.520
VOL-2, ISSUE-7, SEPT-2018

आदिवासी हिन्दी कविताओं में स्त्री और बाल चेतना

अनीश कुमार

पी–एच.डी. शोध छात्र हिन्दी विभाग सांची बौद्ध भारतीय– ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश
ईमेल : *anishaaditya52@gmail.com*

कविता समस्त ज्ञान का अंतिम जीवन, तत्व एवं स्वास्थ्य माना जा सकता है । जैसा कि 'शेक्सपियर' ने मनुष्य के विषय में कहा, कवि के विषय में पूरी दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि, "वह आगे की ओर और पीछे की ओर देखता है ।" वह अपने साथ प्रत्येक जगह संबंध, श्रद्धा और प्रेम ले जाकर तथा मानव स्वभाव का समर्थक एवं रक्षा स्थल होकर उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी उठाता है । कविता ज्ञान का प्रथम और अंतिम रूप है । यह मानव के हृदय भाँति अमर है । यह प्रवृत्ति विमर्शों को लेकर लिखी गई कविताओं में भी देखि जा सकती है ।

आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है । यह ऐसा विमर्श है जिससे इस समुदाय की परंपरा, रूढ़ियां, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है । लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपि आदि विभिन्न धरातलों पर आदिवासी लेखन एक व्यापक विमर्श का हिस्सा बन रहा है । चूंकि इसकी लिपि और भाषा को लम्बे अरसे तक पहचान ही नहीं मिल सकी इसलिए उनका संरक्षण और विकास भी बाधित हुआ । प्रतिष्ठित मराठी आदिवासी साहित्यकार वाहरू सोनवणे का यह कहना ठीक है कि लिखित ही केवल साहित्य होता है यह कहना ही आदिवासियों की दृष्टि से असंगत है । साहित्य और कला, साहित्य और जीवन के बीच जो दीवारें समाज में खड़ी हैं, उन दीवारों का आदिवासी समाज में कुछ भी स्थान नहीं है । इन व्याख्याओं को बदलना जरूरी है क्योंकि आज आदिवासी समाज में कई प्रथाएं लोकगीत और नाटक तथा अनेक अन्य कलाएं विद्यमान हैं जिसे शब्दबध्द नहीं किया गया है । हजारों वर्षों से चली आ रही परंपराएं कभी थमी नहीं । वे परम्पराएं आज भी मौलिक रूप में आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग रही हैं । फिर इसे साहित्य कैसे नहीं कहेंगे । ऐसी दलीलें इस बात की आवश्यकता जता रही हैं कि आदिवासी साहित्य को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है ।

आदिवासी साहित्य की विधाओं में 'कविता' आदिवासी साहित्य की दृष्टि की महत्वपूर्ण विधा रही है । आदिवासी कवियों ने कविताओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति, समाज व भाषा के दयनीय दशा का वर्णन करते हैं । समाज की यथास्थिति को भी दिखाने का प्रयास करते हैं । आदिवासी कविताओं में विभिन्न सामाजिक विद्रोह, नारी का जीवन संघर्ष, विस्थापन, अस्तित्व की समस्या और शिक्षा, पूंजीवाद का विरोध, बाल जीवन की समस्याएँ जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से दिखाई देती हैं । आदिवासी कवियों में सुशीला सामद, निर्मला पुत्तुल, वारुण सोनवणे, हरिराम मीणा, अनुज लुगुन, केशव मेश्राम, महादेव टोप्पो, डॉ. मंजू ज्योत्सना, सरिता बड़ाइक, डॉ. राम दयाल मुंडा, वंदना टेटे, रमणिका गुप्ता, जसिन्ता

केरकेट्टा आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।सभी ने संथाली, गोंडी, बंजारा, हो आदि समुदायों के सभ्यता व समस्याओं को उठाते हैं । आदिवासी कविताओं के माध्यम से समाज की प्रताड़ित महिलाओं की आत्मा की चीख, मदद के लिए पुकारती आवाजें–पहाड़ों, जंगलों और घाटियों में नगाड़े की तरह बजने लगती हैं । विभिन्न आदिवासी समुदायों की अपनी अलग व्यथा व समस्या होती है जिसे आदिवासी कविताओं में बखूबी देखा जा सकता है । अगर हम भारतीय समाज और संस्कृति के हवाले से कहें तो स्त्री के साथ 'माता', 'भू–माता', 'पृथ्वीमाता', 'धरतीमाता' जैसे विशेषण लगाएँ जाते हैं । ये सभी प्रवृत्तियाँ आदिवासी हिन्दी कविताओं में दिखाई देती हैं । पिछले कई सालों में एक और प्रवृत्ति आदिवासी कविता के संबंध में बार–बार दिखलाई पड़ी है । वह प्रवृत्ति हैदृआदिवासी कविताओं को गैर आदिवासी मानकों पर परखने की ।

जब आदिवासी समाज में स्त्रियों की बात होती है तो ऐसा माना जाता है कि आदिवासी स्त्रियाँ अन्य समाज की तुलना में अधिक स्वतंत्र होती हैं । लेकिन इस संदर्भ में बिटिया मुर्मू ने लिखा है कि– "भारत की संस्कृति में महिलाओं की जो स्थिति है, आदिवासी संस्कृति में महिलाओं की स्थिति उससे बहुत भिन्न नहीं है । आम धारणा है कि आदिवासी महिलाएँ अधिकार संपन्न तथा बराबर की हकदार हैं, किन्तु ऐसी बात नहीं है ।"1 अर्थात् वस्तु स्थिति कुछ और ही है । इस पर विचार करना चाहिए । दरअसल आदिवासी समाज सामूहिकता और समानता में विश्वास रखता है । अंग्रेजों के आगमन से पूर्व आदिवासी समाज में स्त्रियाँ सभ्य और सुसंस्कृत कहे जाने वाले समाज से ज्यादा स्वतंत्र होती थीं । झारखंड में आदिवासी समाज में 'पौन प्रथा' प्रचलन में है, जिसमें पुरुष को ही वधू के लिए कन्या शुल्क देना पड़ता है, तभी उसकी शादी हो सकती है । उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आदिवासियों ने अपनी स्त्रियों को कुछ अधिकार तो दिए हैं जो सामान्यतः तथाकथित मुख्यधारा वाले समाज ने अपनी स्त्रियों को नहीं दिए हैं लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि आदिवासी समाज में स्त्रियों का शोषण नहीं होता । यहाँ शोषण के स्तर भिन्न हो सकते हैं ।

आदिवासी चिंतकों का मानना है कि आदिवासी समाज में जितनी भी विकृतियाँ आई हैं वे सभी बाहरी हस्तक्षेप से आई हैं । रमणिका गुप्ता ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि– "जब गैरआदिवासी समाज आदिवासी क्षेत्र में जमीनों के पट्टे लिखाकर और सूदखोर बनकर प्रवेश करने लगा तब से जमीनें और जंगल गैर आदिवासियों के पास हस्तांतरित होने शुरू हुए, विशेषतया झारखंड, छत्तीसगढ़ क्षेत्रों में । तब से दूसरे समाज की सारी विकृतियाँ इस समाज में प्रवेश करने लगीं और सामूहिक प्रवृत्ति की जगह वर्चस्ववादी प्रवृत्ति की शुरूआत ।"2 आदिवासी समाज में भी स्त्रियों का शोषण करने के लिए विभिन्न तरह के तर्क पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने बनाए हैं । समाज ने स्त्रियों को कुछ काम करने से मना किया, उसके लिए पुरुष समाज ने यह तर्क दिया है कि शारीरिक बनावट के आधार पर यह विभाजन किया गया है । लेकिन ऐसा नहीं की आदिवासी समाज में पितृसत्ता को बनाए रखने के लिए यह तर्क दिया गया है । यह एक तरह से स्त्रियों के ऊपर अधिकार जताने जैसा ही है । आदिवासी समाज में स्त्रियों को हल चलाना, घर का छप्पर छाना और धनुष चलाना वर्जित है । इन चीजों पर अगर हम गौर करेंगे तो पाएँगे कि यह चीजें जमीन और सम्पत्ति की प्रतीक है और यह वर्जनाएँ इस बात का द्योतक हैं कि सम्पत्ति पर पुरुषों का ही अधिकार रहे । निर्मला पुतुल ने 'सजोनी किस्कू' नामक एक आदिवासी महिला को लेकर एक कविता लिखा है –

"बस! बस!! रहने दो ।
कुछ मत कहो सजोनी किस्कू
मैं जानती हूँ सब
जानती हूँ कि अपने गाँव बागजोरी की धरती पर
जब तुमने चलाया था हल
तब डोल उठा था
बस्ती के माँझी–थान में बैठ देवता का सिंहासन
गिर गई थी पुश्तैनी प्रधानी कुर्सी पर बैठ
मगजहीन माँझी 'हाड़ाम' की पगड़ी
पता है बस्ती की नाक बचाने खातिर
तब बैल बनाकर हल में जोता था

जालिमों ने तुम्हें
खूँटे में बाँधकर खिलाया था भूसा ।"3

'बाल जीवन' संभावनाओं से युक्त माना जाता है । कहा भी जाता है वह कच्चे घड़े के समान होते हैं । उन्हें जिस परिवेश या वातावरण में रखा जाएगा उसी के अनुसार उनकी दिनचर्या बन जाती है । वास्तव में बच्चों की पहली पाठशाला उनका अपना घर ही होता है और 'माँ' पहली शिक्षिका होती है । माँ यदि शिक्षित है तो वह अपने बच्चे को 'सही' रास्ता ही दिखाएगी । आज की दुनिया ग्लोबल दुनिया हो गई है । लगभग सभी मनुष्य इसकी गिरफ्त में आ चुके हैं । यही वजह है कि बच्चे अपने मूल चीजों से दूर होते जा रहे हैं । कम उम्र में ही सबकुछ पा लेने की लालसा उन्हें परिवार, समाज से अलग कर दे रहा है । विज्ञान की प्रगति और औद्योगिकीकरण के बढ़ते प्रभाव ने आज जीवन को तेजी से बदला है । उससे बच्चे अछूते नहीं हैं । अपने स्तर पर वह अपनी समस्याओं का निदान ढुढ़ते हैं । हम ही अराजित जात–पाँत, छूआछूत, ऊंच–नीच और अपना–पराया जैसे शब्दों को उनके सामने लाते रहते हैं । इस संदर्भ में आदिवासी कवयित्री वंदना टेटे लिखती हैं –

"चिंतित हूँ और उदास भी
कि छूट रही है मेरे बच्चों से बहुत सारी चीजें
बहुत बड़ी दुनिया
जिन्हें वे शायद ही जान पाएँ ।"4

मनुष्य चाहे जितनी भी ऊँचाइयाँ क्यों न छू ले किन्तु उसे अपनी संस्कृति, परम्पराएँ नहीं भूलनी चाहिए । इन सभी के बदौलत आज के ग्लोबल युग में बाल मन के ऊपर इसका अलग ही प्रभाव दिखाई दे रहा है । वंदना टेटे जी इस चिंता को और गंभीरता से व्यक्त करती हैं –

"सच में
मैं चिंतित और उदास हूँ
कि नहीं जान पाएंगे मेरे बच्चे
डोरी, कुसुम से तेल निकालने की
मछली और चिड़िया पकड़ने की
देसज तकनीक ।
महुआ लट्ठा, इमली के बीज के साथ
औटाया गया खाने का स्वाद ।"5

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू जी ने ठीक ही कहा है कि "मैं हैरत में पड़ जाता हूँ किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का भविष्य जानने के लिए लोग तारों को देखते हैं । मैं ज्योतिषी की गिनतियों में दिलचस्पी नहीं रखता । मुझे जब हिंदुस्तान का भविष्य देखने की इच्छा होती है तो बच्चों की आँखों और चेहरों को देखने की कोशिश करता हूँ । बच्चों के भाव मुझे भावी भारत की झलक दे जाते हैं ।" बच्चे ही एक सभ्य समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं । जिस घर में महिला शिक्षित होगी उस घर के बच्चे समान्यतया शिक्षित होंगे ही । बाबा साहब ने इसके आगे कहा था कि जिस घर की महिला शिक्षित होगी वह पूरा घर शिक्षित हो जाता है । 'माँ' और 'बच्चे' का अटूट संबंध होता है । अतः जब महिला सशक्त होगी तो बच्चे अपने आप सशक्त होंगे ।

आदिवासी समाज समतमूलक समाज है । उनके यहाँ महिलाओं को समानता का दर्जा गैरआदिवासियों की अपेक्षा अधिक है । आज की मौजूदा स्थिति में महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं । महिलाओं के साथ छेड़खानी, बलात्कार आदि की घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं । लेखिका अपने साथ–साथ उन सम्पूर्ण महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हुई ललकारती हैं –

"खड़ी है जबरन अपनी जमीन पर
हां बड़ी उद्दंडता से
क्योंकि फतवा जारी है
उसके खिलाफ ।"6

आदिवासी महिलाओं के शोषण के साथ–साथ एक और बात जुड़ी है, वह उनका यौन शोषण । आर्थिक या जातिगत स्तर का हाशिया इन महिलाओं के शरीर को भी एक उपभोग की वस्तु में बदल देता है । भारत के कई इलाकों में "डाला प्रथा" इसका प्रमाण है । आदिवासी स्त्रियों ने पहले से अपने हक और अधिकारों के लिए पुरुष के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया है । समय–समय पर अपने हाथ में हथियार भी उठा लिए हैं । कवयित्री निर्मला पुत्तुल ने अपनी कविताओं में स्त्री अस्मिता के प्रश्नो को एक प्रतिरोधी स्वर में कहती हैं –

"आज की तारीख के साथ
की गिरेंगी जितनी बूंदें लहू की की प्रथ्वी पर
उतनी ही जन्मेंगी निर्मला पुत्तुल
हवा में उट्ठी–बंधें हाथ लहराते हुए ।"7

सरिता बड़ाइक की कविताओं में औरत को एक वस्तु के बजाय उसे एक सशक्त नारी व उसको आजाद दिखाया गया है । उनकी कविता में स्त्री पात्र ग्रामीण परिवेश के साथ एक अलग चित्र प्रस्तुत करती है । सरिता बड़ाइक पितृसत्ता को ललकारते हुए कहती हैं कि –

"चूल्हे बिस्तर की परिधि में
मुझे नहीं है रहना
गऊ चाल में चलकर नहीं है थकना
मन में भरी है कविता
मंजूर नहीं है थमना
हे प्रियवर....."8

हिन्दी आदिवासी कविताओं में स्त्री और बाल जीवन के समस्याओं, दुखों, यातनाओं और इन सबके बीच स्त्री के अस्तित्व की जद्दोजहद और विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए निरंतर संघर्ष करने की शक्ति को रेखांकित किया गया है । आदिवासी स्त्री जीवन अपनी धड़कनों, जीवंतताओं और प्रामाणिकता के साथ यहाँ विद्यमान है । आज यह हाशिये पर पर जीवन जीने को मजबूर है, किन्तु सभ्यता के घेरे से बाहर इस समुदाय को प्रकाश एवं दिशा देने का दायित्व हम सभी पर है । आने वाले दिनों में यह दायित्व हम किस रूप में पूरा करते हैं, उनकी अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए, यह सवाल इतिहास में हमेशा बना रहेगा ।

संदर्भ ग्रंथ :

1. गुप्ता, रमणिका. (सं.). युद्धरत आम आदमी. नई दिल्ली. पूर्णांक 80. दिसम्बर–2005. पृष्ठ 90
2. दुबे, श्यामचरण. समय और संस्कृति. पृष्ठ 64
3. गुप्ता, रमणिका. (सं.). युद्धरत आम आदमी. नई दिल्ली. पूर्णांक 55. 2001. पृष्ठ 72
4. टेटे, वंदना. 2015. कोनजोगा. प्यारा केरकेटटा फाउंडेशन. झारखंड. पृष्ठ 11
5. टेटे, वंदना. 2015. कोनजोगा. प्यारा केरकेटटा फाउंडेशन. झारखंड. पृष्ठ 12
6. टेटे, वंदना. 2015. कोनजोगा. प्यारा केरकेटटा फाउंडेशन. झारखंड. पृष्ठ 41
7. पुत्तुल, निर्मला. 2005. नगाड़े की तरह बजते शब्द. भारतीय ज्ञानपीठ. नई दिल्ली. पृष्ठ 91
8. बड़ाइक, सरिता. 2013. नन्हें सपनों का सुख. रमणिका फाउंडेशन. नई दिली. पृष्ठ 108